"हिन्दी साहित्य का बदलता स्वरूप और जीवन दृष्टि का संदर्भ"

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग को प्रस्तुत

लघुशोध परियोजना

सार–सारांश

प्रस्तुतकर्त्ता

डॉ. अनुपम शर्मा,
प्रवक्ता, हिन्दी विभाग
श्री भगवानदास तोदी पी.जी. कॉलेज,
लक्ष्मणगढ़ (सीकर) राजस्थान
पिन – 332311

सम्पूर्ण मानव समुदाय की सोच को जब कुछ सहृदय मनुष्यों द्वारा अभिव्यक्त किया जाता है तो वह साहित्य बन जाता है। चूंकि यह मानव का मानव के लिये लिखा गया वक्तव्य है इसलिये यह सम्पूर्ण मानव समुदाय को अपनी ओर आकर्षित करता है। जो घटनायें किसी भी पात्र के माध्यम से साहित्य में दर्शायी जाती है वे किसी भी व्यक्ति के जीवन में कभी भी घटित हो सकती हैं। यह अनिश्चय की स्थिति ही प्रत्येक व्यक्ति को साहित्य को देखने, सुनने व पढने की ओर आकर्षित करती हैं। कोई भी व्यक्ति कभी भी अपने युग से विच्छिन्न होकर नहीं रह सकता। युग का प्रभाव प्रत्येक व्यक्ति पर पड़ना शास्वत हैं। 50–100 वर्षों बाद अपने व्याख्यानों में यह कह देना बड़ा आसान होता है कि उस व्यक्ति को उस समय यह करना चाहिये था। मेरा मानना यह है कि किसी युग विशेष में यदि किसी भी युग पुरूष ने कोई कदम उठाया है तो निश्चित रूप से उस युग की परिस्थितियां वैसी रही होगी। जिस प्रकार से हमने कहा कि किसी भी युग से कटकर कभी कोई साहित्य नहीं हो सकता उसी प्रकार हम यह भी कह सकते है कि साहित्य का सीधा सम्बन्ध जीवन शैली या दृष्टि से भी है। साहित्य का केन्द्र बिन्दु सिर्फ मनुष्य है। एक ओर आश्चर्यजनक तथ्य से आपको अवगत करना चाहूँगा कि मानव, मनुष्य या व्यक्ति विशेष को कैसा होना चाहिये इसके मानदण्ड भी सदैव बदलते रहे हैं। इसी बदलती मान्यता ने ही कथा के स्वरूप को सदा परिवर्तित किया है। कभी वह दयालू है, कभी वह बलशाली है, कभी वह वीर और हिंसक है तो कभी वह कृपण है। मैं यह भी कह सकता हूँ कि कभी कभी साहित्यकार स्वयं भी परिस्थितियों का निर्माण करता है और उसी परिस्थिति के अनुरूप नायक या व्यक्ति विशेष की कार्यशैली को निर्धारित करता है। यही परिस्थिति की सम्पृक्ति काव्य की महानता को बढाता है।

यह एक निर्विवादित सत्य है कि हिन्दी का साहित्य बहुत समृद्ध है तथा उसका सृजन भी बेहद सुन्दर ढग से हुआ है। बहुत से लेखकों ने तो ऐसा सृजन किया कि वह शब्दातीत और कालातीत हो गया। कालक्रम की सीमाओं से परे मानव समुदाय के हित में किये गये कार्य सदैव प्रशंसनीय रहेंगे। एक व्यक्ति विशेष के द्वारा किये गये कार्यो को आदर्श मानकर उसके अनुरूप आचरण करने की प्रवृत्ति सदैव रही है तथा सदैव रहेगी। सम्पूर्ण जीवन दृष्टि को समझ पाने के छोटे–छोटे प्रयास प्रत्येक मनुष्य करता रहता है। यही समझने की चाह और

न समझ सकने के बीच की दूरी पर ही साहित्य का सृजन होता है। स्वरूप चाहे कोई भी रहा हो परन्तु चाह सभी की जीवन शैली को समझना ही रहा है। एक तथ्य मैं जरूर अभिव्यक्त करना चाहूँगा कि ठीक–ठीक यही सत्य है यह कोई नहीं जानता। यह नहीं जानना ही व्यक्ति की जिज्ञासा को बढाता है तथा उसे सृजन की ओर प्रेरित करता है। वर्ना क्या है कि जिसे युगों–युगों से अभिव्यक्त किया जा रहा है और वह आज भी उतना ही अधूरा है ? जितना लिखा जाता है उतना ही बढ़ जाता है। साहित्य का यह अविरल प्रवाह ही हमें बताता है कि जितना कठिन मनुष्य की बाह्य संरचना को समझ पाना है उससे भी कहीं अधिक कठिन उसके आन्तरिक स्वरूप को समझा पाना है।

पहले मनुष्य सिर्फ बोलता ही था, बाद में ताड़ के पत्तों पर या भोजपत्र पर लिखना प्रारम्भ किया। बाद में गीली मिट्टी या पत्थरों पर लिखा जाने लागा। पर यह लिखना वास्तव में बड़ा कठिन कार्य था इसलिये इसका विकास बड़ी धीमी गति से हुआ। यही कारण था कि शिक्षा कुछ सीमित लोगों तक ही व्याप्त थी। मध्ययुग में जाकर कागज का आविष्कार हुआ तभी से छपाई का प्रचलन आरम्भ हो गया। यही कारण है कि प्राचीन समस्त सामग्री विलुप्त हो गयी। यह कार्य भी इतना व्यय साध्य था कि सभी तक इसकी पहुँच सम्भव नहीं थी। यही कारण है कि हम चाहते है कि सभी लोग पढ़ना लिखना सीखें, जिसे पढ़ना लिखना नहीं आता हमारी दृष्टि में वह अशिक्षित होता है। हम देखते है कि जो भी भाषाएँ लिखी जाती हैं वे ही प्रगति करती है बाकी विलुप्त हो जाती है। लिखने के कई फायदे हैं बोलने से कही गयी बात हो सकता है कि किसी के एक बार में समझ में नही आयी हो पर लिखने से वह उसे दुबारा भी पढ़ सकता है। कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक बात हम कह देते हैं। लिखे हुए विचार सुरक्षित रहते हैं जो कि पीढ़ी दर पीढी ज्ञान के विस्तार में सहायक सिद्ध होते है। हम सुनते है कि हमारे यहाँ के ऋषि मुनियों ने हर क्षेत्र में इतनी खोज की, परन्तु हमें उनकी जानकारी सिर्फ श्रव्य स्त्रोतों से प्राप्त होती है। जिसका कोई स्पष्ट आधार नहीं होता। अगर वे सारी बातें उस समय लिखी गयी होती तो उनका ठोस आधार होता। ऐसी स्थिति में एक व्यक्ति की खोज का फायदा दूसरे व्यक्ति को तभी मिलता है जबकि वह उसका समकालीन होता है। अगर कहीं इसकी कडी टूटी, तो प्राप्त ज्ञान सारा समाप्त हो जाता। अतः हम

P.T.O.

मानते है कि निःसन्देह काफी सारी उपलब्धियां रही होंगी ऋषि–मुनियों की, परन्तु लिखित स्वरूप के अभाव में वे सारी विलुप्त हो गयी। जब से भाषा का लिखित स्वरूप चला है तभी से विचारों का स्थायीकरण प्रारम्भ हो गया। फिर लिपि का एक फायदा यह भी है कि बोली गयी बात को एक सीमित जन समुदाय ही सुन पायेगा परन्तु लिखी गयी बात को कोई भी कभी भी सुन सकता है। इस प्रकार लिपि भाषा का स्थायी स्वरूप है।

साहित्य की सबसे रूचिकर बात यह रही कि सिर्फ यही वह विद्या है जिसमें कोई भी मनुष्य इतना अधिक खो जाता है कि जिससे वह अपने पराये का भेद भूल जाता है। आचार्यो ने जिसे साधारणीकरण की उपमा भी दी है। जब मनुष्य अपने मन के भावों को विस्तारित करने लगता है तो वह किसी पराये या दूसरे के जीवन में घटी घटनाओं से भी इतना अधिक प्रभावित हो जाता है कि वह दूसरे के जीवन की घटनाओं के अनुरूप ही हंसने और रोने लगता है। न केवल उन घटनाओं के अनुरूप व्यवहार ही करता है अपितु घटनानिस्तारण एक ऐसे स्वरूप में चाहता है जो कि सम्पूर्ण मानव जाति के हित में हो। इसीलिये किसी भी कथा से जब श्रोता या पाठक जुड़ता है तो अन्त तक उसके साथ रहना चाहता है तथा जो समस्या उक्त कथा में खड़ी की गयी है, उसका समाधान भी मानवहित के अनुरूप चाहता है। ऐसे में कहा जा सकता है कि व्यावहारिक जीवन में चाहे यह माना जाये कि मानव–मानव का दुश्मन है परन्तु वास्तविक रूप से उसका अन्तर्मन मानव जाति का विनाश नहीं चाहती है। दूसरे के हित में ही वह अपना हित महसूस करता है। इसीलिये कहते है कि जो स हित है वही "साहित्य" है।

मानव सुलभ स्वभाव होता है कि किसी भी तरीके से अपनी ही प्रजाति के लोगों पर अपना प्रभुत्व तथा श्रेष्ठता स्थापित करे। इसी प्रभुत्व तथा श्रेष्ठता के लिये मनुष्य कई–कई बार अनेकोनेक लोगों का वध तक करता आया है। लक्ष्य सभी तरह के लोगों का एक ही होता है तरीकें सभी के अलग–अलग होते हैं। बल से, कभी धन से, कभी सत्ता से, कभी वैभव से, कभी बुद्धि से तो कभी धर्म से एक व्यक्ति दूसरे व्यक्ति से श्रेष्ठ बनने का प्रयास करता रहा है। जिन–जिन चीजों का किसी समय विशेष के लोगों पर प्रभाव पड़ता है वे ही सारी स्थितियां तथा परिस्थितियां प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप में साहित्य में भी व्यक्त की जाती है। क्योंकि साहित्य मानव मन की अभिव्यक्ति हैं। प्रत्येक युग का मानव मन उस युग के अनुरूप

P.T.O.

ही सोचता है। एक आम आदमी तथा साहित्यकार में फर्क भी यही होता है कि आम आदमी स्थिति के अनुरूप सोचता तो है परन्तु सटीक अभिव्यक्ति की सामर्थ्य उसमें नहीं होती। ऐसे में परिस्थिति चाहे कुछ भी रही है परन्तु साहित्यकारों ने हर युग को लिखा है। जब सारे कवियों के साहित्यों को उस युग की सामाजिक राजनीतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक परिस्थितियों के सापेक्ष में हम देखते है तो पाते हैं कि एक निश्चित काल विशेष से एक निश्चित काल विशेष तक सारे ही साहित्यकार एक जैसा लिख रहे हैं। क्योंकि जिन परिस्थितियों से उस युग का आम आदमी गुजरता है उन्हीं परिस्थितियों से उस समय का साहित्यकार भी गुजरता है। गुजरता ही नहीं अपितु उस युग को भोगता और जीता भी है तभी प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष में उस युग की माँग या समय को लिखता हैं।

मैं अपने इसी संदर्भ में कि हिन्दी साहित्य का स्वरूप क्या है इस हेतु ही अपनी बात को रेखांकित कर रहा हूँ कि अगर हिन्दी का अर्थ हम सिर्फ और सिर्फ खड़ी बोली से लेते है तो निश्चित तौर पर हमारे पास आधुनिक काल के अलावा कुछ नहीं बचता क्योंकि इससे पहले खडी बोली हिन्दी में इतना कुछ लिखा ही नहीं गया था फिर संरक्षित नहीं रहा। ऐसी स्थिति में ही हमें अपने साहित्य में ब्रज अवधी तथा राजस्थानी में लिखे साहित्य को शामिल करना पडता है। तत्कालीन युग में इन भाषाओं में लिखने वालों की गलती नहीं थी क्योंकि उन्हें क्या पता था कि आगे चलकर खड़ी बोली को राष्ट्रभाषा का दर्जा मिला जायेगा ? वर्ना आज के समय में जिस प्रकार देश के किसी भी कोने में बैठा व्यक्ति खड़ी बोली हिन्दी में लिख रहा है वैसे ही लिखता। फिर दूसरी समस्या ओर भी थी कि स्वयं भारत भी सदैव खण्ड–खण्ड रहा। भारत का भी ठीक–ठीक यह स्वरूप नहीं था जो कि अब नजर आता है। ऐसी स्थिति में छोटे–छोटे गणराज्य ही राष्ट्र थे और वे सभी अपनी–अपनी राष्ट्रभाषा में ही लिख रहे थे। सभी राज्यों की परिस्थितियां अलग-अलग रही इसलिये लिखने के क्षेत्र भी अलग-अलग रहे। ऐसे में अगर कहा जाये कि शुद्ध हिन्दी में तो हमें आधुनिक काल में ही साहित्य नजर आता है तो अतिश्योक्ति नहीं होगी। हाँ अगर हम इसे थोड़ा विस्तारित संदर्भ में ले कि जिन राज्यों की भाषाओं की लिपि देवनागरी है तथा कुछ–कुछ हिन्दी भाषी प्रान्त है उन सभी का साहित्य हिन्दी साहित्य है तभी हम अपने इतिहास को संवत 1000 तक

P.T.O.

विस्तारित कर सकते हैं। उसमें भी उपलब्ध साक्ष्यों और काव्यों के आधार पर। अनेक ऐसे प्रान्त भी रहे हैं जिनमें साहित्य भी लिखा गया परन्तु संरक्षण के अभाव में समाप्त हो गये।

हमने अलग–अलग कालों का विभाजन उस समय के उपलब्ध साहित्य के आधार पर किया तथा उसी आधार पर उसका नामकरण भी कर दिया। परन्तु प्रश्न यह भी उठता है कि क्या वे ही परिस्थितियां सम्पूर्ण भारत में एक जैसी रही थी। शायद नहीं। मेरा कहने का मतलब हमारा दृष्टिकोण एकांगी रहा है। यही कारण है कि हमारे उत्तर भारत के साहित्य का दक्षिण भारतीयों ने विरोध किया है। यही कारण है कि हिन्दी को राष्ट्र भाषा मानने के लिये वे तैयार नही हैं। परन्तु यह अलग विषय है कि राष्ट्रभाषा क्या हो ? मुख्य विषय है हिन्दी साहित्य का बदलता स्वरूप। मैं भी अन्य पाठकों की तरह ही यह मान लेता हूँ कि हिन्दी का अर्थ देवनागरी लिपि में लिखी जाने वाली सम्पूर्ण भाषायें हैं। ताकि हमारे पास इतिहास कहने के लिये कुछ सामग्री मिल सके। चलो यह भी अच्छा ही हुआ कि अंग्रेजों की राजधानी बंगाल को मानकर उन्होंने बाग्ला को राष्ट्रभाषा नहीं कहा वर्ना तो काफी मुश्किल हो जाती। खडी बोली को हिन्दी मानने से बहुसंख्यक समुदाय इसे आसानी से पढ़ बोल व समझ सकता है। सीखना भी आसान है। परन्तु जब तक बदलते हुए साहित्य की बात करते है तो हमारी दृष्टि संकीर्ण नहीं होनी चाहिये।

साहित्य का इतिहास बदलती हुई अभिरूचियों और संवेदनाओं का इतिहास है। अभिरूचियों और संवेदनाओं के बदलाव का सीधा सम्बन्ध आर्थिक और चिन्तनात्मक परिर्वतन से है। कुछ लोगों की दृष्टि में आर्थिक परिर्वतनों के साथ साहित्यिक परिवर्तनों का तालमेल बैठा देना ही साहित्य का इतिहास होता है। कुछ लोग संस्कृति के धरातल पर ही अभिरूचियों का विकास–क्रम निर्धारित करते हैं। वस्तुतः आर्थिक और सांस्कृतिक परिवर्तनों में पेचीदा सम्बन्ध है। स्थूल रूप से दोनों के कारण–कार्य का सम्बन्ध स्थापित करके सरलीकरण नहीं किया जा सकता, अतः साहित्येतिहास के सन्दर्भ में दोनों के सम्बन्धों और देन का विवेचन अतिरिक्त अवधानता की अपेक्षा रखता है।

आधुनिक काल के पूर्व भारतीय गॉवों का आर्थिक ढाँचा प्रायः अपरिवर्तनशील और स्थिर रहा है। गॉव अपने आप में स्वतः पूर्ण आर्थिक इकाई थे। इनकी अपरिवर्तनशीलता को लक्ष्य करते हुए सर चार्ल्स मेटकाफ ने लिखा है– "गॉव छोटे–छोटे गणतन्त्र थे। उनकी अपनी

आवश्यकताएँ गाँव में पूरी हो जाती थी। बाहरी दुनिया से उनका कोइ सम्बन्ध नहीं था। एक के बाद दूसरा राजवंश आया, एक के बाद दूसरा उलटफेर हुआ; हिन्दू, पठान, मुगल, सिक्ख, मराठों के राज्य बने और बिगडे पर गाँव वैसे के वैसे ही बने रहे।"

गाँव की जमीन पर सबका समान अधिकार था। किसान खेती करता था। लुहार, बढई, कुम्हार, नाई, धोबी, गौंड, तेली आदि गाँव की अन्य आवश्यकताएँ पूरी करते थे। पेशा जाति के अनुसार निश्चित होता था। एक जाति का व्यक्ति दूसरी जाति का पेशा नहीं करता था क्योंकि इसके लिए वह स्वतंत्र नहीं था।

नगर और गाँव अपनी-अपनी इकाइयों में पूर्ण और एक दूसरे के असंबद्ध थे। नगर तीन तरह के थे, राजनीतिक महत्व के नगर, धार्मिक नगर और व्यापारिक नगर। नगरों में मूल्यवान वस्तुओं का निर्माण होता था। रत्नजटित आभूषणों, बारीक सूती-रेशमी वस्त्रों, हाथीदाँत की मीनाकारी, वस्त्रों की रंगाई आदि के लिए इस देश की अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति थी। पर इन वस्तुओं की खपत धनी वर्ग में होती थी, विशेष रूप से राजाओं--महाराजाओं, सामंतों, श्रेष्ठियों आदि में। नगरों का उद्योग सामान्य वस्तुओं का निर्माण नहीं करता था। गाँव का घरेलू उद्योग अलग था और नगरों का अलग। दोनों की अलग-अलग इकाइयाँ थी। अंग्रेज व्यापारियों ने इस देश को अपना बाजार बनाने के लिए यहाँ के बारीक धंधों को बहुत कुछ नष्ट कर दिया। जो कुछ बाकी बचे थे वे नई सामाजिक व्यवस्था के कारण नष्ट हो गए।

प्रस्तुत शोध ग्रन्थ जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है कि हिन्दी का स्वरूप परिवर्तन मनुष्य की जीवन दृष्टि के साथ किस प्रकार होता है इसी को ध्यान में रखते हुए सृजित किया गया है। हमारा मानना यह है कि जैसे-जैसे जीवन दृष्टि बदलती रहती है वैसे-वैसे साहित्य भी बदलता रहता है। दोनों ही स्थिति एक-दूसरे की पूरक है। निर्विवाद रूप से यही राही है कि अगर हमें बीते हुए समय के आमजन की स्थिति को जानना है तो इसका स्वरूप हमें कभी नहीं बता सकता। आमजन को मनःस्थिति अगर कोई बता सकता है तो वह सिर्फ और सिर्फ साहित्य ही है। क्योंकि वह एक आम नागरिक के द्वारा लिखा गया होता है। आम व्यक्ति वही लिखता है जो कि वह महसूस करता है। बाह्य परिस्थितियों का प्रभाव व्यक्ति के मन मस्तिष्क पर पडे बिना नहीं रह सकता। हम देखते है कि बाह्य परिस्थितियों में भी बुराइयों और विकृतियों से व्यक्ति ज्यादा प्रभावित होता है ऐसी स्थिति में यद्यपि अलग-अलग कवियों की

P.T.O.

शैलियों में विभेद हो सकता है परन्तु एक समय के कवियों का मर्म सदैव एक जैसा ही रहता है। हम यह कह सकते है कि हमारा सम्पूर्ण साहित्य का इतिहास मनुष्य की मनःस्थिति का इतिहास है। हर एक काल की अन्तर्दशा ने मजबूर किया है मनुष्य को उसके अनुरूप लिखने के लिये। हमने प्रत्येक काल में यह भी देखा है कि एक युग पुरूष है जो कि पूरे काल को खीच ले जाता है बाकी कवि उसका अनुसरण करते चले जाते है। बात यह नहीं है कि सिर्फ वही प्रतिभाशाली होता है बाकी नहीं। हम सिर्फ इतना ही कह सकते है कि उस समय विशेष में उसका पैदा होना तथा उस युग के अनुरूप कविता करना एक संयोग मात्र होता है, हाँ उसमें उस युग के अनुरूप प्रतिभा होती है इसलिये वह उस युग का सर्वश्रेष्ठ कवि हो जाता है। बाकी हर युग में वीर, श्रृंगारी तथा भक्त व्यक्ति पैदा होते है परन्तू सम्मान व प्रशंसा वही पता है जो कि उस युग के अनुरूप होता है। बाकी व्यक्तियों में प्रतिभा होने के बावजूद भी प्रशंसा इसलिये नहीं मिलती क्योंकि वे युगानुरूप नही होते। हम इसे यों भी समझ सकते हैं कि आज तकनीकि के युग में अगर कल्पना करें कि कोई कवि तलवार या कंचुकी के गीत गाये तो निश्चित तौर पर पसन्द नहीं किया जायेगा। आज अगर कोई भ्रष्टाचार या महिला विमर्श पर लिखेगा तो उसे पढा भी जायेगा तथा सुना भी। क्योंकि यह समय की मांग है। यद्यपि ऐसी बात नहीं कि आज का व्यक्ति नायिका के रूप में सौन्दर्य पर मोहित नहीं होता या देश भक्ति भी भावना विलुप्त हो गयी हो। वे सभी चीजें भी समानान्तर रूप से चलती रहती हैं परन्तु मूल रूप से जो समय की मांग है उस पर अगर लिखा जाये तो अधिक प्रभावशाली होगा।

डॉ. अनुपम शर्मा
शोधकर्ता.